International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

धर्मशास्त्रीय शिक्षा प्रणाली के वर्तमान निहितार्थ

डॉ. देवेन्द्र सिंह राजपूत

सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग, हरियाणा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़ अणुसंकेत: devendra.rajput@cuh.ac.in

सारांश

धर्मशास्त्रीय शिक्षा प्रणाली मानव सभ्यता के बौद्धिक और नैतिक विकास का एक महत्वपूर्ण अंग रही है। भारतीय शिक्षा व्यवस्था वेद, उपनिषद, श्रीमद्भगवद्गीता, रामायण, महाभारत, सूत्र और स्मृति ग्रन्थों से सिंचित एवं अनुप्राणित रही है, और मध्यकालीन भारत में धर्मशास्त्रीय परंपरा ने इस शिक्षा प्रणाली को एक नवीन दिशा दी। यह पद्धति व्यक्ति में सत्य, अहिंसा, करुणा, दया, परोपकार और सामाजिक सेवा जैसे नैतिक गुणों का आधान करने में सहायक रही है। वर्तमान समय में जब वैज्ञानिक प्रगति और आधुनिक शिक्षा प्रणाली का वर्चस्व बढ़ रहा है, धर्मशास्त्रीय शिक्षा के महत्व और उसके निहितार्थों पर पुनर्विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। प्रस्तुत शोधपत्र में धर्मशास्त्रीय शिक्षा पद्धति की वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में मूल्यों के विकास तथा एक सशक्त समाज के निर्माण में जो भूमिका है, उसका अवलोकन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

बीज शब्द — सद्भाव, धर्मशास्त्र, आध्यात्मिक, नैतिकता, धर्मसूत्र इत्यादि।

1. प्रस्तावना

धर्मशास्त्र उन ग्रंथों को कहा जाता है जो धर्म, आचार और कर्त्तव्यों की शिक्षा से संबंधित शास्त्र हैं। मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, धर्मसूत्र और पुराण इत्यादि इनमें प्रमुख माने जाते हैं। स्वयं मनुस्मृति में कहा गया है—

"श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः।
ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्वभौ।।"

यहाँ 'श्रुति' का अर्थ वेद और 'स्मृति' का आशय मनु तथा अन्य महर्षियों द्वारा प्रतिपादित ज्ञान से है। धर्मशास्त्रों में वर्ण व्यवस्था, विवाह, दान, पूजा और अन्य मानवीय कर्त्तव्यों व आचरण के विषय में स्पष्ट निर्देश मिलते हैं।

2. धर्मशास्त्रीय शिक्षा प्रणाली

यह शिक्षा प्रणाली न केवल धार्मिक मान्यताओं और आध्यात्मिक मूल्यों को संरक्षित करने में सहायक रही है, बल्कि समाज में नैतिकता, अनुशासन और कर्तव्य-बोध को भी सुदृढ़ करती आयी है।

"वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम् ।
आचरश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च॥"

इस श्लोक में धर्म के प्रमाण बताए गए हैं। एकमात्र वेद ही पूरे धर्म का मुख्य आधार है, अर्थात् वेदों में धर्म का पूर्ण प्रतिपादन किया गया है। इसके अतिरिक्त, धर्म के तत्व को जानने वाले शास्त्र, स्मृतियाँ, पुराण, महात्माओं का उत्तम आचरण, तथा आत्मा की संतुष्टि — अर्थात् जहाँ किसी विषय पर कई पक्ष बताए गए हों, वहाँ जिस विधान को मानने से आत्मा प्रसन्न व संतुष्ट हो — इन्हें भी धर्म के तत्व का आधार माना जाता है।

भारत में धर्मशास्त्रीय शिक्षा का इतिहास अत्यंत प्राचीन है। वेद, उपनिषद, महाभारत, रामायण और त्रिपिटक जैसे ग्रंथों के अध्ययन से समाज में धार्मिक चेतना का क्रमिक विकास हुआ। धर्मशास्त्र पर आधारित यह शिक्षा व्यक्ति में सत्य, अहिंसा, करुणा, दया, परोपकार और सामाजिक सेवा जैसे नैतिक गुणों को विकसित करती है, और इस प्रकार समाज में सद्भाव तथा नैतिकता की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

3. धर्मशास्त्रीय शिक्षा व्यवस्था की वर्तमान उपादेयता

धर्मशास्त्र हिंदू धर्म के धार्मिक, कानूनी और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रंथ हैं। इनमें न केवल धार्मिक कर्तव्यों और प्रथाओं का वर्णन मिलता है, बल्कि समाज के विभिन्न वर्गों, उनके कर्तव्यों और आचार-व्यवहार पर भी प्रकाश डाला गया है। मनुस्मृति इन सबमें सबसे प्रसिद्ध और प्राचीन धर्मशास्त्र मानी जाती है, जो धर्म, न्याय, आचार और समाज के विभिन्न वर्गों के कर्तव्यों के बारे में बताती है। इसमें वर्ण व्यवस्था — ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र — तथा उनके कर्तव्यों का उल्लेख मिलता है, और यह ग्रंथ सामाजिक न्याय, पारस्परिक संबंधों तथा व्यक्तिगत कर्तव्यों को समझने में सहायक सिद्ध होता है।

"वृद्धांश्च नित्यं सेवेत विप्रान्वेदविदः शुचीन् ।
वृद्धसेवी हि सततं रक्षोभिरपि पूज्यते।।"

इसका आशय है कि हमें सदा वेदज्ञाता, पवित्र आचरण वाले तथा वृद्धजनों की संगत में रहकर उनकी सेवा करनी चाहिए; जो वृद्धों की सेवा करता है, वह राक्षसों तक से सम्मान पाता है। आज बढ़ते वृद्धाश्रमों के मूल में कहीं-न-कहीं इसी सेवा-भाव का अभाव देखा जा सकता है। याज्ञवल्क्य स्मृति को मनुस्मृति के बाद दूसरा प्रमुख धर्मशास्त्र माना जाता है, जिसमें धार्मिक और विधिक नियमों के साथ-साथ व्यक्तिगत जीवन, विवाह, संपत्ति अधिकार और दान पर भी विस्तार से चर्चा की गई है; न्यायिक दृष्टि से यह ग्रंथ शेष स्मृतियों में विशेष महत्व रखता है। परिवारों में विवाद का एक सामान्य कारण संपत्ति-विभाजन रहा है, जिसके संदर्भ में याज्ञवल्क्य स्मृति के व्यवहाराध्याय के दायविभाग प्रकरण में कहा गया है—

"विभागं चेत्पिता कुर्यादिच्छया विभजेत्सुतान्।
ज्येष्ठं वा श्रेष्ठभागेन सर्वे वा स्युः समांशिनः॥"

अर्थात् यदि पिता स्वयं संपत्ति का विभाजन करे तो वह अपनी इच्छानुसार कर सकता है — ज्येष्ठ पुत्र को श्रेष्ठ भाग, मंझले को मध्यम भाग और छोटे को अपेक्षाकृत छोटा भाग देकर, अथवा सबको समान भाग देकर। साथ ही पुत्रों का भी यह कर्तव्य बताया गया है कि वे पिता को पूज्य मानकर उनकी बात का आदर करें। वर्णाश्रम-व्यवस्था — वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) और आश्रम (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास) — हिंदू समाज-रचना का एक अन्य आधार है। महर्षि वेदव्यास द्वारा रचित माने जाने वाले अठारह महापुराणों में प्राचीन राजाओं और उनकी वंश-परंपरा का उल्लेख मिलता है, साथ ही समाज, आचार-विचार, तीर्थ, योग और ध्यान जैसे विषयों की भी विस्तृत चर्चा है। पुराणों ने भारतीय संस्कृति, दर्शन, कला और साहित्य को गहराई से प्रभावित किया है — उदाहरणस्वरूप, गरुड़ पुराण मृत्यु के पश्चात् आत्मा की गति का वर्णन करता है, जो भारतीय परंपरा में अंत्येष्टि कर्मों का आधार बना। इस प्रकार पुराण केवल धार्मिक ग्रंथ नहीं, अपितु भारतीय परंपरा के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दर्पण भी हैं, जिनमें समाज के अनेक पहलू एक साथ प्रतिबिंबित होते हैं।

4. विवाह और पारिवारिक कर्तव्य

धर्मशास्त्रों में विवाह-प्रक्रिया, पति-पत्नी के कर्तव्यों, दान तथा परिवार की संरचना का भी विस्तृत वर्णन मिलता है।

"ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः।

गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः॥"
इस श्लोक में विवाह के आठ प्रकार बताए गए हैं — ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस, और सबसे निम्न कोटि का पैशाच। इसी से जुड़ा एक और उल्लेखनीय श्लोक बताता है कि इनमें से कौन-से धर्मसम्मत हैं और कौन-से नहीं—
"पञ्चानां तु त्रयो धर्म्या द्वावधर्म्यौ स्मृताविह।
पैशाचश्चासुरश्चैव न कर्तव्यौ कदाचन॥"
अर्थात् पहले पाँच में से तीन — ब्राह्म, दैव, आर्ष आदि — धर्मसम्मत माने गए हैं, जबकि पैशाच और आसुर को अधर्म्य कहा गया है, जिन्हें कभी नहीं अपनाना चाहिए। ये दोनों श्लोक ही विवाह के उपरोक्त वर्गीकरण के मूल स्रोत हैं। ब्राह्म विवाह को इनमें सर्वोत्तम माना गया है, जिसमें योग्य और संस्कारी वर को बिना किसी दहेज या मांग के कन्या का दान किया जाता है और जो ज्ञान तथा धर्म पर आधारित होता है। दैव विवाह उस स्थिति में होता है जब किसी यज्ञ या धार्मिक अनुष्ठान में पुरोहित को कन्या दान की जाती है — इसे ब्राह्म विवाह से कुछ कम श्रेष्ठ माना गया है। आर्ष विवाह में वर द्वारा कन्या के पिता को गाय या धन देकर विवाह संपन्न किया जाता है, और इसे मध्यम कोटि का विवाह माना गया है। प्राजापत्य विवाह में वर को यह निर्देश देकर कन्या सौंपी जाती है कि वह उसके साथ धर्मपूर्वक जीवन व्यतीत करे, इसमें भी कोई दहेज या मूल्य नहीं लिया जाता। गांधर्व विवाह प्रेम-विवाह का ही एक रूप है, जिसमें वर-कन्या परस्पर एक-दूसरे को पसंद कर विवाह करते हैं और परिवार की सहमति अनिवार्य नहीं मानी जाती। आसुर विवाह में वर कन्या के परिवार को धन देकर विवाह करता है, और धन के इस लेन-देन के कारण इसे अपेक्षाकृत निम्न कोटि का माना गया है। राक्षस विवाह में कन्या का बलपूर्वक अपहरण कर विवाह किया जाता है, जिसे अनैतिक और अनुचित माना गया है, तथा पैशाच विवाह — जिसमें कन्या की इच्छा के विरुद्ध, छल से या उसकी नशे की अवस्था में विवाह किया जाता है — इसे सबसे निंदनीय रूप कहा गया है। मनुस्मृति विवाह को एक धार्मिक और सामाजिक कर्तव्य के रूप में देखती है, जिसमें ब्राह्म विवाह सर्वश्रेष्ठ और पैशाच विवाह सबसे निकृष्ट माना गया है। वर्तमान समाज में प्रचलित विवाह-परंपराएँ मुख्यतः ब्राह्म, प्राजापत्य और गांधर्व विवाह से प्रभावित दिखाई देती हैं।

5. यज्ञ और धार्मिक विधियाँ

यज्ञ और पूजा भारतीय संस्कृति तथा वैदिक परंपरा के अत्यंत महत्वपूर्ण अंग हैं। ये केवल धार्मिक क्रियाएँ ही नहीं, बल्कि आध्यात्मिक, सामाजिक और नैतिक जीवन को संतुलित रखने के साधन भी हैं। प्राचीन काल से ही मनुष्य ने प्रकृति, देवताओं और परमात्मा के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए यज्ञ और पूजा की परंपरा को अपनाया है। यज्ञ का मूल अर्थ है त्याग, दान और समर्पण, और वैदिक युग में इसे अत्यधिक महत्त्व दिया जाता था।
"ॐ अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
होतारं रत्नधातमम् ॥"
अर्थात् मैं अग्निदेव की स्तुति करता हूँ, जो यज्ञ के पुरोहित, देवता और रत्न प्रदान करने वाले हैं। धर्मशास्त्रों में यज्ञ और पूजा-विधियों के संबंध में स्पष्ट निर्देश मिलते हैं — विभिन्न देवताओं की पूजा किस विधि से हो, दान कैसे दिया जाए, और धार्मिक कार्यों का आयोजन किस प्रकार किया जाए। यज्ञ में अग्नि को आहुति देकर देवताओं को प्रसन्न किया जाता था, जिसमें घी, अनाज और औषधियों जैसी सामग्री का प्रयोग होता था। इसका एक वैज्ञानिक आधार भी माना जाता है, क्योंकि प्रयुक्त सामग्री वातावरण को शुद्ध करने के साथ-साथ सकारात्मक ऊर्जा भी उत्पन्न करती है; इस अर्थ में यज्ञ केवल बाह्य क्रिया न होकर आंतरिक शुद्धि का माध्यम भी है।
"ॐ भूर्भुवः स्वः।
तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।

धियो यो नः प्रचोदयात् ॥"
अर्थात् हम उस परम दिव्य प्रकाश (भगवान) का ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धि को सन्मार्ग पर प्रेरित करे — इस मंत्र के माध्यम से व्यक्ति अपने अहंकार, लोभ और बुराइयों के त्याग का संकल्प लेता है। पूजा-विधि यज्ञ से कुछ भिन्न होते हुए भी उससे जुड़ी हुई है; पूजा का अर्थ है आदर, सम्मान और भक्ति सहित ईश्वर का स्मरण करना, जो घर, मंदिर या किसी भी पवित्र स्थान पर की जा सकती है। इसमें दीप, धूप, फूल, नैवेद्य और जल जैसी सामग्री का प्रयोग होता है, और इसकी प्रक्रिया सामान्यतः शुद्धि-आचमन से आरंभ होकर देवता के आवाहन, स्नान, वस्त्र-अर्पण, पुष्प-अर्पण, आरती और अंततः प्रसाद-वितरण तक चलती है। यज्ञ जहाँ सामूहिक और व्यापक कल्याण का प्रतीक है, वहीं पूजा व्यक्तिगत भक्ति और आत्मिक शांति का माध्यम है — दोनों मिलकर व्यक्ति को आध्यात्मिक उन्नति की ओर ले जाते हैं और उसके जीवन को शुद्ध, संतुलित तथा सार्थक बनाने में सहायक होते हैं। इस प्रकार यज्ञ और पूजा केवल कर्मकांड नहीं, अपितु जीवन को सही दिशा देने वाले साधन हैं, जो व्यक्ति और समाज दोनों के कल्याण में योगदान करते हैं।

6. धार्मिक और सामाजिक कर्तव्य

धार्मिक और सामाजिक कर्तव्य मानव जीवन के दो महत्वपूर्ण आधार-स्तंभ हैं, जो व्यक्तित्व-निर्माण तथा समाज की सुचारु व्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं — जैसे धर्म का पालन, सत्य बोलना, अहिंसा का व्यवहार और समाज में एकता बनाए रखना।
"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥"
अर्थात् मनुष्य का अधिकार केवल कर्म करने में है, उसके फल में नहीं — इसलिए फल की चिंता किए बिना अपने कर्तव्यों का पालन करते रहना चाहिए। 'धार्मिक कर्तव्य' व्यक्ति के आंतरिक जीवन, आस्था, नैतिकता और आध्यात्मिक उन्नति से जुड़ा होता है, जबकि 'सामाजिक कर्तव्य' का संबंध समाज के प्रति उसके व्यवहार, उत्तरदायित्व और सहयोग-भावना से होता है। धार्मिक कर्तव्य मनुष्य को सत्य, अहिंसा, दया, क्षमा और आत्मसंयम जैसे गुणों के पालन की प्रेरणा देता है; यह केवल पूजा-पाठ, व्रत और अनुष्ठानों तक सीमित नहीं, बल्कि जीवन में सदाचार अपनाने और ईश्वर के प्रति श्रद्धा रखने का भी नाम है।
"संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे सञ्जानाना उपासते॥"
अर्थात् सभी लोग मिलकर चलें, मिलकर विचार करें और अपने मन एक रखें, जैसे प्राचीन देवता एकता के साथ यज्ञ किया करते थे। मनुष्य मूलतः एक सामाजिक प्राणी है और समाज से अलग होकर नहीं रह सकता; उसे अपने परिवार, पड़ोस और देश के प्रति कर्तव्यों का पालन करना चाहिए — जैसे बड़ों का सम्मान, बच्चों का पालन-पोषण, समाज में शांति व सद्भाव बनाए रखना, तथा कानून का पालन करना। इनके साथ-साथ स्वच्छता बनाए रखना, पर्यावरण की रक्षा करना और सामाजिक कार्यों में सहभागिता भी अत्यंत आवश्यक मानी जाती है। धार्मिक और सामाजिक कर्तव्यों में गहरा संबंध है — जब व्यक्ति धार्मिक कर्तव्यों का पालन करता है तो उसमें नैतिक गुण विकसित होते हैं, जो उसे एक आदर्श नागरिक बनाते हैं, और जब वह सामाजिक कर्तव्यों का ईमानदारी से निर्वाह करता है तो समाज में प्रेम, सहयोग और एकता का वातावरण बनता है। इन दोनों का संतुलन ही व्यक्ति के जीवन को सफल और सार्थक बनाता है।

7. निष्कर्ष

धर्मशास्त्रों का मुख्य उद्देश्य समाज में धार्मिक और नैतिक व्यवस्था बनाए रखना रहा है। ये शास्त्र यह दिशा दिखाते हैं कि किस प्रकार के आचार, कर्तव्य और सिद्धांतों का पालन किया जाए ताकि व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन में संतुलन तथा शांति बनी रहे। धर्मशास्त्र न केवल धार्मिक नियमों के पालन का मार्गदर्शन देते हैं, बल्कि यह भी सिखाते हैं कि व्यक्ति को अपने कार्यों के परिणामों के प्रति सजग रहना चाहिए, और आत्मिक उन्नति तथा समाज में उचित स्थान पाने के लिए सम्यक् आचार व नैतिकता का पालन करना चाहिए। इन शास्त्रों का प्रभाव आज भी भारतीय समाज में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है — चाहे वह पारिवारिक कर्तव्यों का प्रश्न हो, सामाजिक आस्थाओं का, या व्यक्ति के आत्मिक विकास का। धर्मशास्त्रीय शिक्षा प्रणाली केवल धार्मिक अध्ययन तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक व्यापक जीवन-दृष्टिकोण प्रदान करती है, जिसकी प्रासंगिकता नैतिकता, सामाजिक सद्भाव और मानसिक शांति के संदर्भ में वर्तमान समय में और भी स्पष्ट हो उठती है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में जहाँ तकनीकी और व्यावसायिक दक्षताओं पर बल दिया जा रहा है, वहीं नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की उपेक्षा भी बढ़ती जा रही है। ऐसे में यह शिक्षा केवल धार्मिकता तक सीमित न रहकर व्यक्ति के समग्र विकास में सहायक बन सकती है, जिससे वह आत्मबोध, आत्मसंयम और समाज-कल्याण के मार्ग पर अग्रसर हो सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. द्विवेदी, पण्डित गिरिजाप्रसाद; श्री मनुस्मृति; 'नवल किशोर विद्यालय' गोमती तट, लखनऊ; श्लोक सं. २.१०, पृष्ठ सं. २४, संस्करण १९२७।
2. वही। श्लोक सं. २.६, पृष्ठ सं. २४।
3. वही। श्लोक सं. ७.३८, पृष्ठ सं. २१३।
4. वेदव्यास, श्रीमद्द्वैपायनमुनि; अग्निपुराण; प्रकाशक, गीताप्रेस, गोरखपुर-२७३००५; व्यवहार खंड, अध्याय २५५ (दायविभागकथनम्), श्लोक १, पृष्ठ संख्या ४९८; सोलहवां पुनर्मुद्रण।
5. द्विवेदी, पण्डित गिरिजाप्रसाद; श्री मनुस्मृति; 'नवल किशोर विद्यालय' गोमती तट, लखनऊ; श्लोक सं. ३.२९, पृष्ठ सं. ६९, संस्करण १९२७।
6. वही। श्लोक सं. ३.२५, पृष्ठ सं. ७०।
7. (सं.) आचार्य, सायणभाष्य सहित; ऋग्वेद संहिता; प्रकाशक, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी; मण्डल-१; सूक्त-१; मंत्र-१, पृष्ठ सं.-१; संस्करण २०१४।
8. वही। मण्डल-३; सूक्त-६२; मंत्र-१०, पृष्ठ सं.-८८।
9. गोयन्दका, हरिकृष्णदास; (अनु.), श्रीमद्भगवद्गीता शाङ्करभाष्यसहिता; गीताप्रेस, गोरखपुर; श्लोक सं. २.४७, पृष्ठ सं. ३९, संस्करण २०११।
10. (सं.) आचार्य, सायणभाष्य सहित; ऋग्वेद संहिता; प्रकाशक, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी; मण्डल-१०; सूक्त-१९१; मंत्र-२; संस्करण २०१४।